इगई होय, सोही सामान्य सद्भूत स्थापना जावसें और पडिमाजी स्थापन कीई जाती है. तातें मूलनायक सदृश, एकही तीर्थंकर की सब प्रतिमा गिनी जाती है ॥ तथा लां छनादिक विशेष स्तद्भाव स्थापनासेंतो मूल नायक व्यतिरिक्त अन्य अन्य तीर्थंकरकी जिप्रतिमा गिनी जाती है ॥ तो भी मूलनाय कजीसे किंचित् भाग न्यून तथा न्यूनतर वा समभाग स्थानपर स्थापन कीइ जाती है. तिसका परमार्थ यह है के, सिद्धायतणे पुर च्छिमेणं दारेणं अणुपविस्सइ अणुपविसइत्ता जेणेव देवछंदए जेणेव अट्ठसयजिणपडिमा उ तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता॥इत्यादि जैन सिद्धांतोंका अभिप्रायसें जिनमंदिरकु श्री गणधर महाराजने सिद्धायतन अर्थात् सि द्धघर कहके बतलाया मालुम होताहै॥ तातें

दित हुये, और कहाकि, ग्रंथ अत्युत्तम बन्या है, वास्ते छपवाके प्रसिद्ध करना योग्य है. तब राज गढके श्रीसंघ तथा कमोदके वासी पोरवाड ज्ञा तीय शेठ खेतावरदासके पुत्र शेठ उदयचंदजीने श्री संघकुं अरज करीके यह प्रथम वर्ग छपके प्र सिद्ध हो जावे, तो अपने लोकोकें सबके उपगा री हो जावे, अरू औरभी जैनधर्मरासिक पुरुष जो इस ग्रंथकुं लेने वांचनेमें रसिक होंगे, तो बा कीके वर्ग अत्युत्तम चमत्कारिक पदार्थ निर्णयो केभी छप जायगे, तो बहुत बालजीवोंके उपगा रिक होगा. ऐसा श्री संघका विचारके साथ यह पदार्थसुधासिंधुतरंगका प्रथम वर्ग छपवाके प्रसि द्ध किया. सो सज्जन पुरुष बांचके हमारे ऊपर उपगार करके इस वर्गमे कोइ प्रमाद योगसे जिन बचन पूर्वाचार्य सम्मती न्यायसे विरुद्ध भासन होय, वो हमारेकुं लिखके जणावेंगे, तो महारा

ज साहेवसें अरज करके उसका खुलासा समा धान पूर्वक दूसरा वर्गमे लिखा जायगा. तथा और नी कोइ प्रश्नका निर्णयकी सज्जनोंकों चाहना होय तो, वो प्रश्न लिखके नेजेगें, तो वो प्रश्ननी समाधान पूर्वक दाखल किया जायगा. और इस प्रथम वर्गको बांचते कोइ गेर कविण वचनका नासन होय तो वो वचन कुछ रू० रूपचंद्रजीके आश्री तथा और सत्याक्षरसापेक्षीके आश्री न ही समझना. लेकिन जैसा प्रश्न तैसा अनुवाद वचन समझके परम मैत्रीनावनासे जो नव्य प्रा णी वाचेगे, वो अत्युत्तम प्रश्नोत्तर तत्वभावतरंग कुं प्राप्त होके, अत्युत्तम मंगल पद वरेंगे.

॥ श्री अर्हनमः ॥

पदार्थसुधासिंधुतरंग ग्रंथे प्रश्नोत्तरतरंग नामा प्रथम वर्गः प्रारंभः

सिरि उसहसेण पहु, वा–रिसेण सिरि वद्ध माण जिणनाह ॥ चंदाणण जिण सबे वि नवह

रा होऽहमहतुप्रे ॥ १ ॥ स्वर्भूमेर्मातृगर्भे गम उदयमहो थः सुरैर्मेरुशैलो-त्सिक्तस्तातालयेगा उप चयमनिशं गाधयाक्रांत विश्वः ॥ पादोपांतावनम्र त्रिभुवन जनता स्वीकृतोच्चैः फलार्द्धिः, श्री वीरो व्याधिचित्राधिकतरवरदः कल्पशाखीनवीन ॥२॥ नत्वा कल्पोपमंवीरं, स्वस्ति श्री वरदायकं ॥ प्र श्नोत्तरतरंगोयं, कुर्वेहं बालभाषया ॥३॥

॥ अथोदंतभाषया ग्रंथः प्रारंभः ॥

प्रश्नः—॥१॥ महावीरस्वामीकुं तो मूलनाय ककरी उच्चस्थान स्थापित करणा, अरु औरकों न्यून स्थान स्थापित करणा, तो आशातनादि दोषका कारण हे के नहीं ? क्योंकि, तीर्थंकर तो गुणोंकरके सब बराबर है.

उत्तरः—जैनशास्त्रोंमें प्रदक्षिणाधिकारमें क हाहै कि, सर्व कृत्य कल्याणवांछक पुरुषने दक्षि णके पास मूलबिंबकों नमस्कार करके, ज्ञानदर्श न अरू चारित्र इन तीनोंके आराधनार्थे तीन

प्रदक्षिणा देवे, प्रदक्षिणा देता हुवा समवसरण स्थ चार रूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे गन्नारे में पूंठे वाम दाहिणा दिशिमें जो बिंब होवे तिन कों वंदे. इसी वास्ते सर्व मंदिरमें चारों तरफ ती नबिंब स्थापे जाते है. ऐसे करनेसे जो अरिहंत की पीठे वसणमें दोष था सो दूर हो गया. पीठ कीसी पासेंभी न रही. इत्यादि युक्तियुक्त जिनमं दिरकुं समवसरणस्थ रूप मानके, ॥ एयाएविहि ए जिणबिंब समवसरणे ठविज्जा ॥ इत्यादि पू र्वाचार्यप्रणीत प्रतिष्ठाकल्पादि वचनसें एक तीर्थं करकी प्रतिमाकुं मूलनायक स्थापन करते है. इसका मुद्दा यह है कि, समवसरणमें भी एकही तीर्थंकर बिराजमान होते है. तैसे जिनमंदिरमे भी ग्राम संघादि नामका तीर्थंकर नामसे वर्ग वैरादि निवर्त्तन करके, नामराशी लेण देण देखके मुखद्वारकी दृष्टि सम आगें मूल सिंघासण तुल्य उच्चस्थानमे मूलनायकजी स्थापित होते है. अरु

और प्रतिमा भी सर्व तीर्थंकर गुणगण सदृश मू ल नायकजी तुल्य है. परंतु तीर्थंकर भगवंतोंके जो नामहै, सो एक तो सामान्यार्थ है जो सब तीर्थंकरोंमें पावे और दूजा विशेषार्थ है, जो एक ही तीर्थंकरके नामका निमित्तहै "यथा" ॥ ऋषती गच्छतीपरमपदमितिऋषभ ॥ जावे जो परमपदकुं सो ऋषभः यह अर्थ सब तीर्थंकरोंमें व्यापक है ॥ अथ विशेषार्थः ॥ उर्वोर्वृषभलांछनमभूद्भगवतोज नन्याचतुर्दशानांस्वप्नानामादौवृषभोदृष्टः तेनऋष भः ॥ भगवानकी दोनो साथलोमें बैलका लांछन था, अथवा भगवंतकी माता मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्न देखाथा, तिस का रणसेती ऋषभ ऐसा नाम दीयाथा. ऐसें ही सर्व तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशे षार्थ श्री आवश्यकादि जैनसिध्धांतोमे कहा है; तैसें इहां स्थापनामे भी जिस तीर्थंकरका ना मसे मूल नायकजीकी सद्भूत स्थापना की

ईगई होय, वोही सामान्य सद्भूत स्थापना
भावसें और पडिमाकी स्थापन कीई जाती
है. तातें मूलनायक सदृश एकही तीर्थंकर
की सब प्रतिमा गिनी जाती है ॥ तथा ला
ञ्छनादिक विशेष स्तभाव स्थापनासेंतो मूल
नायक व्यतिरिक्त अन्य अन्य तीर्थंकरकी
भिप्रतिमा गिनी जाती है ॥ तो भी मूलनाय
कजीसें किंचित् भाग न्यून तथा न्यूनतर
वा समभाग स्थानपर स्थापन कीइ जाती है.
तिसका परमार्थ यह है के, सिद्धायतणे पुर
त्थिमेणं दारेणं अणुपविस्सई अणुपविसइत्ता
जेणेव देवछंदए जेणेव अठसयंजिणपडिमा
उ तेणेव उवागछई उवागछईत्ता॥इत्यादि जै
न सिद्धांतोंका अभिप्रायसें जिनमंदिरकु श्री
गणधर महाराजने सिद्धायतन अर्थात् सि
द्धघर कहके बतलाया मालुम होताहै॥ ताते

जैसे सिद्धोकी अवगाहना ऊंच नीच है, परंतु सदृश गिने जाते है. तथा और जैसे समवसरणमें स्वर्णरत्नवप्रांतरालमे तीर्थंकर महाराजके एकांत बैठनेका स्थानहै तिसकुं देवछंदा कहतेहै. तैसें सिद्धायतन अर्थात् जिनमंदिरमें जहां जिनप्रतिमा बैठनेका स्थानहै. तिसकुं गणधर महाराजजीने देवछंदा कहा है. इस लिये मूलनायकजीका जो बैठनेका उच्चस्थान भागहै, इतना भाग मूल समवसरणस्थ सिंहासन भाग अर्थात् रत्नवप्रअभ्यंतर सिंहासन भाग गिना जाताहै. और अन्य प्रतिमाका बैठनेका भागहै, वो देवछंदस्थित सिंहासन भाग गिना जाताहै. जो भी देवछंदमें अशोक छत्र चामरादि सहित सिंहासन होताहै; तोभी मूल समवसरणस्थित सिंहासनतें न्यूनतर संभवीतहै. वहांभी

देशना व्यतिरिक्तकालमें सब तीर्थंकर विरा
जमान होतेंहै. तद्वत सिद्धायतन अर्थात्
जिनमंदिरका देवछंदेमेंभी जो जो अन्य
अन्य प्रतिमाका बैठनेका विभागहै, वो वो
विभाग देवछंदस्थ सिंहासन विभाग गिना
जाता है. तातें औरकुं न्यून प्रदेशमे स्थापी
त करणा, सो आशातनादि दोपका कारण
नहीं है. तथा ज्यों समवसरणमें पूर्व दिग्-
द्वार प्रवेश कारक तीर्थंकरका मूल रूपकुं
वंदन पूजा सत्कारादि करणेका फल प्राप्त
होते है. तिसहीकी नांइ व्यंतर देवकृत् द-
क्षिणादि तीन दिशिमे रत्नमयी भगवत्प्राति
रूप बिंवको वंदन पूजनादि करणेसें मूल-
रूपवत्फल प्राप्त होते है तैसें जिनमंदिरमें
भी मूलबिंवकी विस्तार सहित पूजा करे,
पीछे अनुक्रमसें सर्व और बिंबोकी पूजादि

करनेसेंजी सदृश फल प्राप्त होताहै ॥ द्वार बिंब समवसरण बिंबोकी जी मूल बिंबकी पूजा करयां पीछे, गजारा सें नीकलती वखत करनी चाहीये. संजव है; परंतु प्रवेश करतां तो मूल ही पूजा करणी उचित मालुम होती है. संघाचारजाष्यमें औसे ही लिखा है. इस वास्ते मूल नायककी पूजा सर्व बिंबोसें पहिलां और विशेष करनी चाहिये ॥ उक्तमपि उचियत्तं पूआए विसेस करणंतु मूल बिंबस्स ॥ जंपड इतछ पढमं, जणस्स दिठि सह गमणेणं ॥११॥ शिष्य प्रश्न करता है कि, चंदनादि करकें प्रथम एक मूल नायककों पूजीयें, अरू दूसरे बिंबोकी पीछे पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक जाव ठहरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरके है नही. क्योंकि

एक बिंबकी बहुत आदरसें पूजादि कृत्य करणा, और दूसरे बिंबोका थोडा पूजादि कृत्य करणा, यह बडी भारी आशातना मुझको मालुम पडती है ॥ गुरु उत्तर कहते है ॥ अर्हत प्रतिमाओंमे नायक सेवककी बुद्धि ज्ञानवंत पुरुषको नहीं होती है ॥ क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखा ही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है. यह व्यवहार मात्र है॥ जो बिंब पहीलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है ॥ इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक भाव दूर नहीं होता है ॥ एक प्रतिमाकों वंदन करना, पूजा करनी, नैवेद्य चढाना, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है ॥ जैसें माटीयाचित्रकीप्रतिमाकीपूजा फूलादि रहित उचित है, अरू सुवर्णादिककी प्रति-

करनेसेंनी सदृश फल प्राप्त होताहै तथा ॥ द्वार बिंब समवसरण बिंबोकी पूजा नी मूल बिंबकी पूजा करयां पीछे, गन्नारा सें नीकलती वखत करनी चाहीये. श्रैसा संन्नव है; परंतु प्रवेश करतां तो मूल बिंबकी ही पूजा करणी उचित मालुम होती है. संघाचारन्नाष्यमें श्रैसे ही लिखा हे. इस वास्ते मूल नायककी पूजा सर्व बिंबोसें पहिलां श्रौर विशेष करनी चाहिये ॥ उक्तमपि उचियत्तं पूश्राए विसेस करणंतु मूल बिंबस्स ॥ जंपड इतछ पढमं, जणस्स दिठि सह गमणेणं ॥११॥ शिष्य प्रश्न करता है कि, चंदनादि करकें प्रथम एक मूल नायककों पूजीयें, श्ररू दूसरे बिंबोकी पीछे पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक नाव ठहरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरके हे नहीं. क्योंकि

एक बिंबकी बहुत आदरसें पूजादि कृत्य करणा, और दूसरे बिंबोका थोडा पूजादि कृत्य करणा,यह वडी भारी आशातना मुझको मालुम पडती है ॥ गुरु उत्तर कहते है ॥ अर्हंत प्रतिमाओंमे नायक सेवककी बुद्धि ज्ञानवंत पुरुषको नहीं होती है ॥ क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखा ही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है. यह व्यवहार मात्र है॥ जो बिंब पहीलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है ॥ इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक भाव दूर नहीं होता है ॥ एक प्रतिमाकों वंदन करना,पूजा करनी,नैवेद्य चढाना,यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है ॥ जैसें माटीपाचित्रकीप्रतिमाकीपूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रति-

माकों स्नान विलेपनादि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करके कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातना का कारण नहीं होता है ॥ जैसें धर्मी पूरुषकों पूजतां और लोकोंकी आशातना नहीं. इसी प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती है, तैसें ही मूल बिंबकी विशेष पूजा तथा उच्चस्थानादि स्थापन करतां दोष नहीं है. जिनमंदिरमे जिनबिंबकी जो पूजा करते है, सो तीर्थंकरोके वास्ते नही करते है, किंतु अपने शुभभावके निमित्तहै. अरू दूसरोंकों बोधकी प्राप्ति होतीहै. कोई जीवतो भी जिनमंदिरकु देखके प्रतिबोध होजाता है, अरू कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांत रूप देखके

प्रतिबोध होजाता है; कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरू कोइ गुरु उपदेशसें प्रतिबोध होजाता है. इस वास्ते चैत्य और जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहीयें. अरू अपणी शक्ति अनुसार मुख्य बिंबकी विशेष अद्भूत शोभा करनी चाहिये. ऊपर लिखनेका तात्पर्य यह है कि, जिनमंदिरके प्रथम प्रवेशमे मूलनायक ही, दृष्टिगोचर होते है, इस लिये श्रीऋषभदेवादि महावीर पर्यंत एक तीर्थंकरकुं श्री जिनमंदिरमें मूलनायकपणे उच्चस्थानपें स्थापित करके, विशेष पूजादि बहुमान करणेमे और प्रतिमाकी आशातनादि दोषका कारण नहीं है. इस प्रश्नका विशेष तर्क वितर्क सहित समाधान श्रीथिरापद्रैकगच्छमंडन वादिवेताल श्रीशांत्याचार्यकृत महाभाष्यसें जानना. इत्य

तंविस्तरेण ॥ इति प्रथम प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रश्नः—सूत्रोमें अकर्तृम चैत्यालय कहे है, और चैत्यालय २ प्रत्ये ॥ १०८ ॥ जिनप्रतिमा कही ॥ तत्पाठः ॥ अठसय जिणपडिमाणं, जिणुसेह पमाण मित्ताणं संनिखत्ताणं चिठ्ठइ ॥ इति वचनात् ॥१०८॥ का क्या प्रमाण न्यूनाधिक क्यों नहीं कही? ॥२॥

उत्तरः—अढीद्वीप मध्ये मनुष्यके ॥१०१॥ क्षेत्र है, तिनोंमेसें ३० क्षेत्र अकर्मभूमिके, और ५६ अंतरद्वीपके, ये दो मिलके ८६ क्षेत्रोंमे युगलीक मनुष्य ऊपजते है. वो मनुष्य तीन उद्यम न करे १ असी २ मसी ३ कसी. अरु तिनोंकी मनोइच्छितकल्पवृक्ष पुर्ण करे. तथा अन्य पन्नर कर्मभूमिके तीन क्षेत्रोमे यह पूर्वोक्त तीन उद्यम है. तिस

कारणाते तिनोंको कर्मभूमि कहते है. इन क्षेत्रोंकी भूमिमे तीर्थंकर होते है. तातें बालजीवोंके उपगारके लिये पन्नर क्षेत्रको किंचित् विवरण सहित नाम लिखते है. ॥५॥ भरत ॥५॥ ऐरवत॥५॥ महाविदेह ॥ इन पन्नर क्षेत्रोंमेंसें महाविदेह क्षेत्र मध्ये तीर्थंकर सदाकाल होय है जघन्यसें. वीश ॥२०॥अरू उत्कृष्टसें १६०तथा बाकी॥१०॥ क्षेत्र मध्ये एकेक क्षेत्रमें एक उत्सर्प्पिणी कालहोय. जब चोवीश तीर्थंकर होय. और फेर जब एक अवसर्प्पिणीकाल होय, जब चउवीश तीर्थंकर होय, इस रीतसें सदा काल होते है ॥ अब ये ॥१५॥ क्षेत्र अढी द्वीपमें कोनसा द्वीपमें, कोनसा क्षेत्र है? वो लिखते है. प्रथम जंबुद्वीपमें एक दक्षिण भरत १ अरू दुसरा धातकीखंडमें दो

भरत. एक पूर्वभरत १ और दूसरा पश्चिमभरत २ तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो भरत. एक पूर्वभरत १ दूसरा पश्चिम भरत २ एवं ५ भरत ॥ अथ ५ ऐरवत ॥ प्रथम जंबूद्वीपमें उत्तर दिशामें एक ऐरवत क्षेत्र १ दूसरा धातकीखंडमें दो ऐरवत. एक पूर्वदिशि १ दूसरा पश्चिमदिशि २. तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो ऐरवत क्षेत्र. एक पूर्वदिशि १ दूसरा पश्चिमदिशि २ एवं पांच ऐरवतक्षेत्र ॥५॥ अब पांच महाविदेह ॥ प्रथम जंबूद्वीपमें एक पूर्व महाविदेह ॥१॥ अरू दूसरा धातकीखंडमें दो महाविदेह. एक पूर्वमहाविदेह १ दूसरा पश्चिम महाविदेह अरू २ तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो महाविदेह. एक पूर्व महाविदेह १ अरू दूसरा पश्चिम महाविदेह २ एवं ५

महाविदेह इन पन्नर क्षेत्रोमेसें ५ महावि देह वर्जित दश क्षेत्रोमे अतित १ अनागत २ वर्तमान ३ यह तीन चोवीशी एक एक क्षेत्रमे होती है. अरू दश क्षेत्रकी सब मी लके तीश चोवीशी होती है, इन त्रीकाल वर्ति तीश चोवीशीमे सातसो वीस अंकतो पि ७२० तीर्थंकर होते है: तिन ७२० तीर्थ करोके नाममें रूषभ १ चंद्रानन २ वारि षेण ३ वर्द्धमान ४, ये चार शाश्वत जिन नामके तीर्थंकर, रूषभ १ चंद्रानन २ वा-रिषेण ३ तथा रूषभ १ चंद्रानन २ वर्द्ध-मान ३ ये तीन शाश्वत जिननाम दशों क्षे त्रोंकी त्रीकालवर्त्ति हरेक एक चोवीशीमें शाश्वत जिननामके तीर्थंकर होते है ॥ जैसें दक्षिणार्द्ध भरतकी वर्त्तमान चोवीशीमे प्र-थम तीर्थंकरका नाम रूषभदेव १ अर्थात्

ऋषभ. अष्टम तीर्थंकरका नाम चंद्रप्रभु अर्था
त् चंद्रानन २ चतुर्विंशतितम तीर्थंकरका ना
म वर्द्धमान ३ ऐसेही अतीत अनागत
वर्त्तमान दश क्षेत्रोंकी तीस चोवीशीमे शा
श्वत जिननामके तीस तरी नेउ तीर्थंकर
होते है. इहां कोइ प्रश्न करेंगे के, अबीकी
उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीकालकी तीस चो
वीशीमे तो दक्षिणार्द्ध भरतकी वर्त्तमान
चौवीशी शिवाय शाश्वत जिननामके तीन
तर्थिंकरोंके नाम दीखते नहीं है, तो तीस
तरी नेउनामके तीर्थंकर कैसे ग्रहण करतेहो?
ताका समाधान यह हैकि, जैसें वर्त्तमान
उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीकालकी दश क्षे-
त्रोंकी तिस चउवीशीमे दक्षिणार्द्ध भरतकी
वर्त्तमान चउवीशीमे शाश्वत जिननामके
तीर्थंकर है, तैसे हि पुष्करार्द्ध पश्चिम ऐरव

रतें अतीत चउवीशीमें नी डुसरा तीर्थंकर श्री वृषनस्वामी ॥ १ ॥ अर्थात् श्री ऋषन फेर ठग तीर्थंकर श्री चंडकेतु अर्थात् चंड सदृश हे अंगका चिन्न जिनका. इस पर्याय अर्थसें शाश्वत तीर्थंकरका नाम चंडानन २ ग्रहण होता है. अरू पुष्करार्द्ध द्वीपें पूर्व ऐरवतें वर्त्तमान चोवीशीमें नी ऐसेही दशमा तीर्थंकरका नाम श्री चंडकेतु है. तथा धातकीखंमका पश्चिम ऐरवतमें नी अतीत चोवीशीमें शाश्वत जिननामका श्री वर्द्धमान तीर्थंकर हुये है. वा धातकीखंम पश्चिम ऐरवतमें वर्त्तमान चउवीशीमें दशमा श्री चंडपार्श्व तीर्थंकरनी शाश्वत नामसें हुये है. इस रीतसें ज्यों अबकी उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी त्रीस चोवीशीमें जंबू नरत ऐरवत धातकीखंम पुष्क

रार्द्ध ऐरवत संबंधी कोई चोवीशीमें तीन३ कोईमे दो२ और कोईमे १ एक शाश्वत जिननामके तीर्थंकर हुये है. तैसें ही अतीत आगामीकालकी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकी तीस चोवीशीमेभी शाश्वत जिननामके तीन तीर्थंकर हुये, अरु होगे, परंतु वर्तमान उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमे जंबूद्वीप संबंधी ऐरवत तथा धातकीखंड पुष्करार्द्ध संबंधी भरतमे शाश्वत जिननामका तीर्थंकरका अभाव देखके व्यामोह न करणा. क्योंके अनादीकालकी यह स्थिति हैकि, दशों क्षेत्रोंकी तीस चउवीशीमे शाश्वत जिननामके तीन तीर्थंकर कोई काल एक क्षेत्रमे अरु कोई काल दूसरे क्षेत्रमे ऐसें अनानुपूर्वीसें सदा सर्वदा काल फिरते होतेहै. तिस लिये तीस चोवीशीके नेक अं

कतोपि॥ए०॥ तीर्थंकर ग्रहण कीये जाते है. तथा पंच महाविदेहमे अवस्थित काल है, तातें जघन्यसें वीस ॥२०॥ अरू उत्कृष्टसें एकसो साठ ॥१६०॥ तीर्थंकर सदा सर्वदा काल होय है ॥ तिस लिये जंबूद्वीपका पूर्वमहाविदेहमें उत्कृष्ट कालमे दो तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होय ॥ फेर धातकी खंम पूर्वमहाविदेहमें जघन्य कालकी वीशीमे शाश्वत जिननामके सप्तम तीर्थंकर श्रीऋषभाननजी विद्यमान है, तैसें ही उत्कृष्टकालमें तीन तीर्थंकर शाश्वत जिन नामके होय ॥३॥ और धातकीखंमका पश्चिम महाविदेहमें जैसें जघन्य कालकी वीशीके द्वादशम तीर्थंकर श्री चंद्राननजी शाश्वत जिननामसें विद्यमान है, तैसें उत्कृष्टकालमें भी शाश्वत जिननामके तीन

तीर्थंकर होते है, तथा पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व महाविदेहमे उत्कृष्टकालमे चार तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होय है, तैसे ही पुष्करार्द्ध द्वीपके पश्चिम महाविदेहमे भी उत्कृष्ट कालमें चार तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होते है. इस रीतसें जघन्य काल उत्कृष्ट कालके पांचुं महाविदेहके अठारा शाश्वत जिननामके तीर्थंकर अरु भरतादि दश क्षेत्रोंकी तीस चोवीशीके तीन तीन शाश्वत जिननामके नेऊ तीर्थंकर सब मिलके एकसो आठ ॥ १०८ ॥ तीर्थंकर शाश्वत जिननामकेहीज होते है तिस लिये जितने शाश्वत चैत्य है, वो भी शाश्वत जिननामसें सिद्धायतन कहे जाते है, तिस शाश्वत सर्व सिद्धायतनोंका प्रति देवछंदमे ॥अठसय जिणपडिमाणं जिणुसेह पमाण

मित्ताणं सन्निखत्ताणं चिठ्ठ ॥ इत्यादि आगम वचनतें ॥ तथा सीरि उसह ॥१॥ वद्धमाणं ॥२॥ चंदाणण ॥३॥ वारिसेण ॥४॥ जिणचंदं ॥ पन्नवणं पडिमाणं म- झेअवुत्तरसयंच ॥ १ ॥ इत्यादि जैनशास्त्रों का वचनसें ऋषभ ॥ १ ॥ चंद्रानन ॥ २ ॥ वारिषेण ॥३॥ वर्द्धमान ॥४॥ इन शाश्वत जिननामके पूर्वोक्त एकसो आठ तीर्थंकर सदा सर्वदा काल होते है. तिस वास्ते शा श्वत सिद्धायतनोके देवछंद देवछंद दीठ पूर्व दिशामे श्री ऋषभानन आदिकी (२७) सत्तावीस शाश्वत जिननामकी प्रतिमा है, और पश्चिम दिशामे श्री चंद्रानन आ- दिकी (२७) सत्तावीस जिनप्रतिमा शाश्व त जिननामकी है. अरू श्री वारिषेण आदिकी(२७)सत्तावीस उत्तर दिशामें शा-

श्वत जिननामकी प्रतिमा है; फेर दक्षिण दिशामे श्रीवर्द्धमान आदिकी(२७)सत्तावीस शाश्वत जिननामकी प्रतिमा है. सब चारु दिशाके मिलके शाश्वत त्रिलोक्य चैत्योंके देवछंदमें अर्थात् मूल गभारेमे पूर्वोक्त न्यायसें एकसो आठसें न्यूनाधिक जिनप्रतिमा नहीं है. तथा ऊर्द्ध अधोलोकवर्त्ति तीन द्वारके शाश्वत जिन चैत्योंके मुख मंरूप वर्जित् तीन द्वारके तीन चोमुखकी वारा प्रतिमा, अरू पांच सभाके पन्नरा चोमुखकी साठ प्रतिमा और तिर्यक् लोक वर्त्ति चार द्वारके साठ जिनभुवनके मुख मंरूप वर्जित् च्यार २ थून्नके चार चोमुखकी सोला सोला प्रातिमा, तथा कुरूल द्वीप प्रमुखके तीन द्वारके तीन चोमुखकी वारा(१२)प्रतिमा, एवं पूर्वोक्त उर्द्धलोककी

मुखमंडप तीन द्वार सन्ना सहित (१८०) एकसो एसी जिनप्रतिमा, अरु सन्ना रहित (१२०)एकसो वीस जिनप्रतिमा, अरू ति-र्यक् लोकमें चार द्वारके मुखमंडप थून सहि-त(१२४)एकसो चोवीस जिनप्रतिमा, अरू तीन द्वार मुखमंडप सहित (१२०) एकसो वीस जिन प्रतिमा; येन्ही सब शाश्वत जिन नामकी हीज प्रतिमा है ॥ इति द्वितीय प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥ २ ॥

-जगत्रके विषे जो जो वस्तु हे, सो अनंत नय अनंत निक्षेपे करी जाणना. इतना ज्ञानकी शक्ति नहीं होय तो ॥ "ज त्थयं जं जाणिज्जा" इत्यादि पाठसें च्यार निक्षेपा तो अवश्य ही मानना. तो तीन नि क्षेपातो संनवे, परंतु नाव निक्षेपा केसें सं-

भवे ? क्योंके भावतो अपणा ही लियां सिद्ध होय. उसमें भाव निक्षेपा केसें मानना ? ॥ ३ ॥

उत्तर—नाम, स्थापना अरु द्रव्य; ये तीन निक्षेपा एक भाव निक्षेपा विना अशुद्ध है. तातें जैसें सब वस्तुमें तीन निक्षेपा संभव है, तैसें ही सब वस्तुमें भाव निक्षेपा भी संभवे है. कैसें के जितनी नामकी वस्तु है, वो सब अपणा २ भाव लियां हि है. परंतु परभाव लीयां नहीं है ॥ ताका किंचित् स्वरूप लिखते है कि, नाम निक्षेप वाच्य वाचक भाव संबंध सें है. अरू स्थापना निक्षेप काति संबंधसें भाव संबंध है—तथा द्रव्य निक्षेप समवाय संबंध है ॥ पुनर्भाव निक्षेप साक्षाद्गुणावह है ॥ इन चार निक्षेपका स्वरूप श्री अनुयोगद्वार

सूत्रका पावसें कहे है ॥ गाथा ॥ “जह्यं जं जाणिज्ञा, निखेव निखेवे निरविसेसं ॥ जत्त्र यनो जाणिज्ञा चवक्कयं निखेवे तत्त्र” ॥१॥ भावार्थः ॥ हे शिष्य ! जो तेरेमें अधिक ज्ञान होय तो, एकेक वस्तुके विषे अनेक प्रकारसें निक्षेपाका अवतार करजे. अरू तैसा अधिक ज्ञान न होय, तो भी जिस वस्तुका जो नाम पडा, तिसमे चार निक्षेपातो जरूर अवतार करजे ॥ १ ॥ तहां आकार तथा गुण रहित वस्तुके विषे जब जैसा नाम वर्ते, तब तैसा नाम करके बतलावे. जैसे एक लकडीका कटका लेके कोइकने तिसका जीव ऐसा नाम कहा, वो नाम जीव जाणणा, यथा काली दोरीके ऊपर सापकी बुध्दि करके घाव करे तो, तिसकु साप मारनेकी हिंसा लगे.

ए नाम स्थाप हुवा ॥ इसहीज रीतसें नाम तप तथा नाम सिद्ध जो वड प्रमुखकुं सिद्धवड कहके वतलाना, वो नाम निक्षेपा कहावे ॥१॥ अरु जो कोइ वस्तुमें कोईक वस्तुका आकारकुं देखके, उसकुं वो वस्तु कहणा, वो स्थापना निक्षेपा कहावे, जैसें चित्राम अथवा काष्ट पाषाणमें जिनादि मुर्त्तिका तथा घोडा हाथीका आकार है, तातें वो घोडा हाथी कहलाते है. सो स्थापना निक्षेपसें कहलाते है. यह स्थापना निक्षेपा नाम निक्षेपा सहित होय. यथा स्थापना सिद्ध जिनप्रतिमा प्रमुख, वो सद्भाव स्थापना पण होय. और असद्भाव स्थापनां पण होय. और अकर्तृम जिनप्रतिमा तो नंदीश्वर द्वीप प्रमुखके विषें, अरू इहांकी जिन प्रतिमा वो कर्तृम ॥ यह सब स्थापना

जाणनी, यह स्थापना निक्षेपा इतर तथा यावत्कथिक दो नेदसे सिद्धांतोंमे कहा हे ॥२॥ तथा "अणुवउगोदवं" ॥ इति अनुयोगद्वार वचनात् ॥ जिसका नाम पण होय, अरू आकार स्थापना गुण लक्षण पण होय, पण आत्मोपयोग रहित ॥ तथा नावका कारणकुं द्रव्य निक्षेपा कहणा ॥ ॥३॥ पुनः॥ "उवउगोनावं"॥ इति वचनात् नाम तथा आकार लक्षण गुण सहित वस्तु होय, उसकु नाव निक्षेपा जाणणा॥४॥ यह चार निक्षेपाका अवतार श्री विशेषावश्यक नाष्यादिकमें इस रीतसें करा हे तत्पाठः ॥ "नाम जिणा जिण नामा, ठवण जिणा पुण जिणंद पडिमाउ ॥ दव जिणा जिण जीवा, नाव जिणा समवसरणञ्चा" ॥ ॥१॥ प्रथम नाम जिन जो जिनेश्वरका नाम

क्रयनादि अरु जिनेश्वरकी मूर्त्ति प्रमुख प्रतिमा थापणी वो सद्भावस्थापना, तथा जिन ऐसा अक्षर लिखणा सो असद्भाव स्थापना तथा जिनेश्वरका जीव पूर्व तीसरा भवमें एकाग्र चित्त करके एक पद आराधन करे, अथवा वीश स्थानक पद आराधे, तब एसी भावना भावे के, सब जगतका जीवोकुं शासनका रसिया करके धर्म प्राप्तकर कर्म सें मुक्त करुं. अरु सब जीवोकुं सुखिया करके मोक्षनगर प्राप्त करुं. ऐसा प्रकारकी उत्तम [illegible]ना भावके, श्रेणिकादि प्रमुखने जिन नाम कर्म [illegible] पुण्य उपार्जन करा, वो भव्य शरीरका द्रव्य [illegible] लेकर, जहां तक केवलज्ञान नहीं उपार्जन क[illegible]रा होय वहां तक छद्मस्थावस्थामें तद्व्यति[illegible]रिक्त शरीरका द्रव्य जाणणा. तथा श्री [illegible]न अरिहंत मोक्ष गये

पीछे तिनका शरीरकी नक्ति इंद्रादिक देवता तथा मनुष्य करे है, वो ज्ञशरीरका द्रव्य जाणणा. ऐसी रीतसें नव्य शरीर तद्व्यतिरिक्त शरीर अरू ज्ञशरीर ऐसें तीन प्रकारसें तीजा द्रव्य निक्षेपा जाणणा ३॥ अव चोथा नाव निक्षेपा जो श्री जिन अरिहंत केवलज्ञान ऊपजे पीछे, त्रिगडेमें वेठ के वारा प्रर्षदामें देशना दे, तिनकुं नाव जिन कहेणा ४॥ तथा कोईका साधु ऐसा नाम हे, वो नाम साधु. और साधुकी मूर्त्तिकी स्थापना करे, वो स्थापना साधु. अरू पंच महाव्रत पाले और क्रिया अनुष्ठान करे, शुद्ध आहार लेवे पण ज्ञान ध्यानका जैसा उपयोग चाहिए, तैसा उपयोग न होय, वो द्रव्य साधु अने जो नाव संवर मोक्षका साधक होके नाव साधुकी करणी करे, उनकुं भाव